KEEP THE TORCH OF DHAMMA A LIGHT

LET IT SHINE BRIGHTLY IN YOUR DAILY LIFE.

विपश्यना

साधकों का मासिक प्रेरणा पत्र

बुद्धवर्ष 2567, वैशाख पूर्णिमा, 05 मई, 2023, वर्ष 52, अंक 11

वार्षिक शुल्क रु. 100/- मात्र (भारत के बाहर भेजने के लिए US $ 50)

अनेक भाषाओं में पत्रिका नेट पर देखने की लिंक : http://www.vridhamma.org/Newsletter_Home.aspx

धम्मवाणी

ये धम्मा हेतुप्पभवा, तेसं हेतुं तथागतो आह।
तेसञ्च यो निरोधो, एवंवादी महासमणो॥

– अपदानपालि-1.1.286, सारिपुत्तत्थेरापदानं

– जो भी स्थितियां कारणों से उत्पन्न होती हैं, तथागत ने उनकी उत्पत्ति के कारण बताये हैं और साथ ही उनका निरोध भी। यही उस महाश्रमण भगवान बुद्ध का वाद है, सिद्धांत है, मार्ग है।

'बुद्ध पूर्णिमा' पर पूज्य गुरुजी का उद्बोधन

ग्लोबल विपश्यना पगोडा, मुंबई, 17 मई, 2011

मेरे प्यारे धर्मपुत्रो, धर्मपुत्रियो; धर्म प्रेमी सज्जनो, सन्नारियो!

आओ समझें कि आज के इस पावन दिवस पर सिद्धार्थ गौतम के संबुद्ध बनने और उनकी संबोधि का क्या महत्त्व है? उनकी शिक्षा का क्या महत्त्व है? उन्होंने कोई संप्रदाय स्थापित नहीं किया। वे जन्म के आधार पर ऊंच-नीच मानी जानी वाली जातियों का ही नहीं, संप्रदायवाद का भी विरोध करते थे। ये दोनों धर्म की शुद्धता के दुश्मन थे। इन दोनों से समाज को बहुत हानि हो रही थी। समाज टुकड़े-टुकड़े में बँट गया था। परस्पर द्वेष और दुर्भावना के कारण सभी लोग दुःखी थे। अन्य बातों को लेकर भी चारों ओर दुःख ही दुःख व्याप्त था। कोई किसी बात को लेकर दुःखी तो कोई किसी बात को लेकर। मनचाही के न होने से दुःखी तो अनचाही के होने से दुःखी। राजा-प्रजा, अमीर-गरीब, विद्वान-अनपढ़ सबके जीवन में अनचाही-मनचाही होती ही रहती है, चाहे कोई कितना ही शक्तिशाली क्यों न हो जाय! क्या इस दुःख से बाहर निकलने का कोई मार्ग है? निकल पड़ा इसकी खोज में।

घर बार छोड़कर वर्षों तक भिन्न-भिन्न प्रकार की साधनाएं की। कर्मकांड वाली नहीं, ध्यान की साधनाएं की, पर संतोष नहीं हुआ। अंत में बोधगया में बोधिवृक्ष के तले सच्चाई की खोज करते-करते, सच्चाई का छेदन-भेदन करते-करते वह सच्चाई प्राप्त कर ली, जहां दुःख का नामोनिशान नहीं, आगे भी आने वाला नहीं। क्या खोज कर ली? उसने निर्णय किया कि निसर्ग के नियमों की जो सच्चाई है उसी के आधार पर खोज करूं। जो सच्चाई क्षण-प्रतिक्षण मेरी अनुभूति पर उतर रही है उसी के सहारे-सहारे बींधते-बींधते देखूं कि इस सच्चाई का अंतिम रूप क्या है? यह तो पहले से ही स्पष्ट था कि जब हमारे मानस में दुःख उत्पन्न होता है तो वह मानस तक ही सीमित नहीं रहता बल्कि फैलता है, शरीर के अणु-अणु में फैल जाता है, अणु-अणु दुःखी हो उठता है और हम उसके बाहर निकलना तो दूर, उसे बढ़ाते ही रहते हैं।

यह क्या प्रपंच है? कैसे होता है? क्यों होता है? पहली बात तो यह किया कि जब कभी सच्चाई का अनुभव करो तो आदि से लेकर अंत तक हमारा आलंबन सच्चाई ही होना चाहिए, तभी हम अंतिम सत्य तक पहुँच सकते हैं। सिद्धार्थ गौतम ने बोधिवृक्ष के तले यही शुरू किया कि जो अनुभव हो रहा है, उसी के सहारे चित्त को एकाग्र करना है। आलंबन वही हो जो अनुभव हो रहा है, कोई कल्पना या अंध-मान्यता या सांप्रदायिक अंधविश्वास नहीं हो। प्रकृति के नियमों के अनुसार क्या सच्चाई प्रकट हो रही है? पहली सच्चाई यह कि श्वास आ रहा है, जा रहा है। श्वास के आने-जाने में कोई कल्पना नहीं है। कोई अंध-मान्यता नहीं है। स्पष्टतया अनुभव हो रहा है- श्वास आ रहा है, श्वास जा रहा है। बस! यहीं से शुरू करना है, इसको छोड़ कर और कोई आलंबन नजदीक नहीं आने पाये, नहीं तो फिर गलत रास्ते पड़ जायेंगे। सच्चाई के रास्ते चलना है तो श्वास जैसा भी है—लंबा है तो लंबा, ओछा है तो ओछा। बायीं नासिका से गुजर रहा है तो बायीं से, दाहिनी से गुजर रहा है तो दाहिनी से। अपनी ओर से कुछ नहीं करना। घटना घट रही है और उसे जाना जा रहा है। बस! नासिका के नीचे ऊपर वाले होंठ के ऊपर, श्वास स्पर्श कर रहा है। मन को उसी स्थान पर केंद्रित करके आते-जाते श्वास को देखें।

जानते-जानते उस स्थान पर कोई संवेदना प्रकट होने लगे, गर्मी-सी, सर्दी-सी, भारीपन-सा, दबाव-सा, दुखाव-सा.. कुछ भी महसूस होने लगा। जानते-जानते यह मानस जो हमेशा बाहर की स्थूल-स्थूल सच्चाइयों को ही महत्त्व देता था, अब अपने भीतर की सच्चाइयों को महत्त्व देने लगा। मन सूक्ष्म होने लगा, तीक्ष्ण होने लगा। यों होते-होते देखता है सिर के सिरे से लेकर पांव की पगथली तक, मन को जहां ले जाय वहीं कुछ न कुछ खटपट हो रही है, संवेदना हो रही है। क्या हो रहा है? अरे! प्रकृति का नियम है—इस शरीर और चित्त का संयुक्त आलंबन प्रतिक्षण उत्पन्न होता है, नष्ट होता है। अनित्य है, नश्वर है, भंगुर है। *"उप्पादवयधम्मिनो"* उत्पाद होना और व्यय हो जाना- यही इसका स्वभाव है। इसे केवल देखें, प्रतिक्रिया नहीं करें। प्रतिक्रिया की तो सच्चाई से दूर हो गए। यह संवेदना महसूस हुई, अरे! बहुत अच्छी या बहुत बुरी। अच्छी महसूस हुई तो उसके प्रति राग जगाया, बुरी लगी तो द्वेष जगाया। अरे! तो साक्षीभाव से कहां देख रहे हो? राग-द्वेष की प्रतिक्रिया कर रहे हो न। नहीं, कोई प्रतिक्रिया नहीं। देखें सिर से पांव तक, पांव से सिर तक जो हो रहा है, उसका रूप-रंग नहीं देखें, अनुभव करें।

रजि. नं. 19156/71. Postal Regi. No. NSK/RNP-235/2021-2023

भारत की पुरानी भाषा में देखना अनुभव करने को कहते थे। आज भी कभी-कभी यह 'देखना' शब्द अनुभव के अर्थ में प्रयुक्त होता है। जब कोई कहता है अरे! यह पकवान बहुत मीठा है, बहुत मीठा है, तू चख कर तो देख।... उस जमाने में देखने का अर्थ अनुभव करना था। उसे *'पस्सना'* कहते थे। *'पस्सति'* देखता है। अपने भीतर देखते-देखते एक शब्द और जागा, *"विसेसेन पस्सतीति विपस्सको"* (*- निरुत्तिदीपनी, लेडी सयाडो गन्थसङ्गहो*) विपश्यी साधक विशेष रूप से देखता है, यानी, विशेष रूप से अनुभव करता है। उसे विपश्यना कहते हैं। और साथ-साथ यह भी जोड़ दिया- *'पञ्ञत्ति ठपेत्वा'*- प्रज्ञापित माने प्रकट सत्य को एक ओर करके देखता है। जैसे "मेरा सिर ऐसा है, चेहरा ऐसा है, हाथ ऐसे हैं, भुजाएं ऐसी हैं, मेरे पांव ऐसे हैं"—यह प्रकट सत्य है। उसे दूर करो और सारे शरीर में विशेष रूप से जो हो रहा है उस सच्चाई का अनुभव करो। यानी, बिना प्रतिक्रिया किये उसके अनित्य स्वभाव को अनुभव से जानो। अनुभव भी कर रहे हो और प्रतिक्रिया भी कर रहे हो तो विपश्यना नहीं है। इस बात को समझ कर खोज करते गये, करते गये। इस खोज में एक अनुसंधान चलता रहा..। अध्यात्म जगत के सबसे ऊंचे महान वैज्ञानिक ने इस खोज में आगे बढ़ते हुए सच्चाई का ही साथ दिया। कहीं किसी कल्पना या मान्यता को नजदीक नहीं आने दिया।

प्रकृति की सच्चाई, कुदरत का कानून, विश्व का विधान, निसर्ग का नियम यही कहता है कि जो हो रहा है उसे साक्षीभाव से देखो। अनुभव करते रहो, प्रतिक्रिया मत करो। यूं देखते-देखते एक अवस्था ऐसी आई, जो हर साधक को आगे बढ़ते-बढ़ते आयेगी ही, मन इतना सूक्ष्म हो जायगा, इतना तीक्ष्ण हो जायगा कि इन सच्चाइयों को बींधने लगेगा। बींधते-बींधते इनका छेदन-भेदन करते-करते, और भीतर तक, और भीतर तक क्या हो रहा है?.. जो हो रहा है हम उसका निर्माण नहीं कर रहे, अपने आप हो रहा है और हम इस विद्या का आलंबन लेकर, उसको अनुभूति पर उतार रहे हैं।

इसी परंपरा का उद्गार प्रकट करते हुए भारत के एक महान संत ने कहा, *"आदि सचु, जुगादि सचु, है भी सचु, नानक होसी भी सचु।"* सच से काम शुरू करें और सच ही सच के आलंबन से आगे बढ़ते जायँ तो अंतिम सत्य तक पहुँच ही जायेंगे। यह वाणी बुद्ध की संबोधि का ही प्रकटीकरण था। संत आगे कहता है—*"थापिआ न जाइ, कीता न होइ, आपे आपि निरंजनु सोइ।"* *'थापिआ न जाइ'*- कुछ इंपोज(आरोपित) मत करना, जो सच्चाई है उस पर कुछ थोपने की कोशिश मत करना। *'कीता न होइ'*- कुछ करना नहीं। *'आपे आपि'*- अपने आप जो हो रहा है, वही निरंजन है। उसका कोई रूप-रंग नहीं है, पर वही सत्य है। *"अंजन मांहे निरंजन रहिये"* - यह साढ़े तीन हाथ की काया अंजन है, दिखती है और वह निरंजन है, दिखता नहीं है।

ऐसी अवस्था पर पहुँचते-पहुँचते, टुकड़े होते-होते एक विशेष बात यह होती है कि जैसे-जैसे उन गहराइयों में इन सच्चाइयों को बिना राग-द्वेष के, समता से देखते हैं तो देखते-देखते चित्त निर्मल होते जाता है। न जाने कितने जन्मों के विकार जो इकट्ठे कर रखे हैं, कब-कब के इकट्ठे कर रखे हैं, और वे समय-समय पर सिर उठाकर हमें दुःखी बनाते हैं, वे सभी निकलने लगते हैं, उनका निष्कासन होने लगता है, उनकी जड़ें खुदने लगती हैं। जड़ों से उन्मूलन हो जाय तो ऐसी अवस्था आती है। *"खीणं पुराणं"* पुराने कर्म-संस्कारों की वजह से जो विकार थे, क्षीण हो गये, खत्म हो गये। *"नवं नत्थि सम्भवं"*- अब नए कर्म-संस्कार, नया कोई विकार बन ही नहीं सकता जो जन्म दे सके। बात समझ में आ गयी, अरे! क्यों जन्म होता है? जन्म देने वाला कोई ऊपर नहीं बैठा है। हम ही अपने जन्मदाता हैं। बार-बार जन्म देते हैं, बार-बार दुःखी होते हैं। हजार रोते रहें- *"पुनरपि जननं, पुनरपि मरणं, पुनरपि जननी जठरे सयनं"* अरे! बार-बार जन्मना, मरना; जन्मना, मरना; कैसे छुटकारा हो इससे? किसी की कृपा से अथवा प्रार्थना करने से नहीं होता, स्वयं काम करना पड़ता है। हर व्यक्ति स्वयं अपना मालिक है। *"अत्ता हि अत्तनो नाथो, को हि नाथो परो सिया।"* तू ही तेरा मालिक है। ऊपर कौन तेरा मालिक है। *"अत्ता हि अत्तनो गति।"* तू ही तेरी गति बनाता है। अपनी नासमझी में, अविद्या में, मूढ़ता में, मूर्खता में, कभी तू अपनी सुगति बनाता है और कभी दुर्गति।

यह जीवन-संसरण चलते ही रहता है। कौन जिम्मेदार है? हर व्यक्ति स्वयं जिम्मेदार है। खूब समझ में आ गया कि बार-बार जन्म लेकर के भिन्न-भिन्न कारणों से दुःखी होने का एक ही कारण है- भीतर जो विकार संग्रह किये हैं कि मेरी मनचाही होनी ही चाहिए, कहीं अनचाही न हो जाय?... यह तृष्णा ही है जिससे विकार और कर्म-संस्कार बढ़ते ही जाते हैं और जनम पर जनम, मरण पर मरण। और जो नया जन्म आता है वह भिन्न-भिन्न प्रकार के दुःखों के साथ आता है। उस अवस्था पर पहुँचने पर यह (गौतम) कहता है- *"अयं अंतिमा जाति।"*- यह मेरा आखिरी जन्म है। *"नत्थि दानि पुनब्भवो।"* - अब आगे पुनर्भव, पुनर्जन्म नहीं होगा। कर्म-संस्कारों के बीज होते तब पुनर्जन्म होता। अब तो इस विद्या को ढूंढ निकाला और इसके जरिए सारे एकत्र किए हुए पुराने कर्मों को उखाड़ फेंका, पुराने विकारों को निकाल फेंका। चित्त नितांत निर्मल हो गया। अब तो शरीर में, चित्त में, *अनिच्च-अनिच्च,* अनित्य है, अनित्य है—यही अनुभव कर रहा है। और जो अनित्य है वह दुःख है, सुख नहीं हो सकता। थोड़ी देर के लिए भ्रांति होती है- बहुत सुखद है, पर अनित्य है तो बहुत दुःखद है भाई! सुख आने के बाद, उसकी समाप्ति कितनी दुःखदायी होती है? जो अनित्य है वह दुःख ही है। अनित्य है तो 'मैं-मेरा' नहीं, 'मेरी आत्मा' नहीं। यह नित्य, शाश्वत, ध्रुव की केवल भ्रांति है, भ्रम है। किसी भी अनुभूति को लो, जो शरीर और चित्त के संयुक्त कारणों से उत्पन्न हुई है, उसको कहे कि बस, अंतिम अवस्था प्राप्त हो गई। यही तो आत्मा है, परमात्मा है, मुक्ति है। नहीं, उस धोखे के बाहर निकला। अरे! धोखा ही धोखा है।

मुक्त अवस्था पर पहुँच जाय तो बोलती बंद हो जाय। क्या बोले? उस अवस्था को क्या कहे? अनुभूति है। उसका वर्णन नहीं। लेकिन सच्चाई सामने आती है—चित्त विकारों से मुक्त हुआ। सच्चाई देखते-देखते तृष्णा से छुटकारा पाया कि मुक्त हुआ। मुक्ति का रास्ता सबके लिए एक जैसा है। कांटा चुभता है तो दुःख होता है। कांटा इस बात को नहीं देखता कि मैं किसके शरीर में चुभ रहा हूं। जिसके शरीर में चुभ रहा हूं वह इस संप्रदाय का है या उस संप्रदाय का...। उसने अपना काम किया और जिसके शरीर में चुभा वह व्याकुल हो गया। अगर व्याकुलता से बचना है तो कांटे को दूर करो। कुदरत का नियम है, आग पर हाथ रखोगे तो जलायेगी ही। यह आग का धर्म है, स्वभाव है, प्रकृति है। अपने आप को जलने से बचाना है तो आग से दूर रहो, नहीं जलोगे। इतनी सीधी-सी बात, परंतु जो मूल कारण है उसका निवारण करना भूल गये।

भगवान की यह शिक्षा भारत में 500 वर्ष तक बड़े शुद्ध रूप में चली। सम्राट अशोक को कलिंग युद्ध के बाद होश आया, अरे! अपना साम्राज्य बढ़ाने के लिए मैंने कितने लोगों को दुःखी किया! उस समय संयोग से महान भिक्षु मोग्गलिपुत्त के संपर्क में आया और बुद्ध की शिक्षा को सैद्धांतिक रूप से समझा। जब उसे बताया गया कि सैद्धांतिक स्तर

पर कितना ही समझ लो, इससे पूरा लाभ नहीं होता। पूरा लाभ तब होगा जब अनुभूति के स्तर पर समझोगे और उसके लिए तुम्हें विपश्यना करनी पड़ेगी। उन दिनों विपश्यना के एक महान आचार्य राजस्थान के बैराठ नगर में रहते थे। इसने निर्णय किया कि वहां जाऊंगा और उस महान आचार्य उपगुप्त के केंद्र में विपश्यना सीखूंगा। कहां पाटलिपुत्र उसकी राजधानी, और कहां यह राजस्थान का दूरदराज का नगर बैराठ, लेकिन पहुँच गया। 300 दिन तक अपनी राजधानी की सारी जिम्मेदारियां मंत्रियों और सेना के हाथों में देकर राजधानी के बाहर रहा और यह विपश्यना विद्या उसे प्राप्त हुई। अब चंड अशोक धम्म-अशोक हो गया। अशोक माने जिसको शोक नहीं, दुःख नहीं। यह विद्या मिल गई तो काहे का दुःख। अब तो रहा नहीं जाता। जिस-जिस को यह विद्या मिलती है, जितनी भी मिलती है, रहा नहीं जाता। "*एहिपस्सिको*" आओ! तुम भी करके देखो।

अरे! यह मेरा साम्राज्य, इतना बड़ा भारत, कोई नहीं जानता इस विद्या को। फैलानी शुरू की। जगह-जगह शिलालेख लिखे, विपश्यना के आचार्य तैयार किये, वे जगह-जगह लोगों को यह विद्या सिखाने लगे। चौरासी हजार विपश्यना के केंद्र बनाये। भगवान बुद्ध की धातु कुछ तो बड़े-बड़े पगोडा में, जैसे सांची में, सारनाथ में, वहां स्थापित किये। यह इसलिए कि एक तो भगवान नहीं रहे, पर उनकी धातु जो उनके शरीर का अंश है, उसका आदर सम्मान हो, और एक इसलिए कि उसकी पावन तरंगों के तले बैठकर हम अपनी विपश्यना को बढ़ायें। सारे भारत में 84 हजार स्तूपों के लिए इतनी शरीर धातु कहां से मिलती, चाहे कितने ही टुकड़े कर लो। तो चिता की जो भस्म थी, उसे थोड़ी-थोड़ी एक-एक डिबिया में डाल करके, छोटे-छोटे स्तूप बनाये। आज तो कुछ बड़े-बड़े स्तूप ही रह गये, बाकी छोटे-छोटे सभी स्तूप नष्ट हो गये। क्यों?

क्योंकि अशोक के 100 वर्ष बीतते-बीतते भारत का बहुत बड़ा दुर्भाग्य हुआ। एक ऐसा विदेशी व्यक्ति किन्हीं स्वार्थी लोगों के षड्यंत्र से तत्कालीन मौर्य सम्राट की हत्या कर देता है और विरोधी लोग उसे सम्राट बना देते हैं। उसके कारण न केंद्र बचे, न धातु बची। बड़े-बड़े स्तूपों में जो शरीर धातु रखी हुई थी बस वही बची। और इतना ही नहीं, दूसरा बड़ा दुष्कर्म यह किया कि बुद्ध की शिक्षा जो 'धर्म' कहलाती थी उसे संप्रदाय बनाने के लिए "बौद्ध धर्म" कहना शुरू किया। बुद्धवाणी में 'धम्म' शब्द 4119 बार आया है, पर 'बौद्ध' शब्द कहीं नहीं है। न तो उनकी शिक्षा को कभी 'बौद्ध धर्म' कहा गया और न उनके अनुयायियों को कभी 'बौद्ध' कहा गया। उसने बुद्धवाणी को भी नष्ट कर दिया। जैसा राजा, वैसी प्रजा। लोगों पर उसका प्रभाव पड़ा और उसे मानने लगे। 2000 वर्षों से भगवान की शिक्षा के विरुद्ध यह बीमारी चल रही है, आज भी चल रही है। हमें उसे बचाना है।

भगवान ने धर्म सबके लिए सिखाया और अशोक ने 'धर्म' के नाम से ही बाहर पड़ोसी देशों में भेजा और उन देशों में धर्म प्रचलित हुआ। जब संप्रदायवादियों ने देखा कि 'धर्म' कहने से इसका विकास हो रहा है तो इसे '*बौद्ध धर्म*' कहें, विकास रुक जायगा। अन्य संप्रदाय का व्यक्ति 'बौद्ध धर्म' सीखने और अपने को बौद्ध कहने क्यों आयेगा? बस! विकास रुक गया। विकास ही नहीं रुका बल्कि भारत से यह विद्या ही लुप्त हो गई।

अशोक के 2000 वर्ष बाद जब मैं इस विद्या के संपर्क में आया, तब यह जानकर बड़ा आश्चर्य हुआ कि भारत में बुद्ध-वाणी के हजारों पृष्ठों के साहित्य का एक पृष्ठ भी नहीं है। विपश्यना विद्या ऐसे लुप्त हुई कि यह शब्द ही नष्ट हो गया। जब हमारे गुरु ने कहा कि आओ तुम्हें भारत की एक महान विद्या सिखायेंगे। क्या सिखायेंगे? तो कहा 'विपश्यना'। मैं चौंका, कभी सुना ही नहीं, 'विपश्यना' क्या है? कहने लगे बहुत पुरानी विद्या है। घर आकर हिंदी और संस्कृत की डिक्शनरियां देखीं, 'विपश्यना' शब्द ही नहीं। जिस देश से शब्द ही नष्ट हो गया, तो विद्या कहां से बचती। तब हमारे गुरुदेव ने कहा कि जिस भारत ने हमें इतना बड़ा अनमोल रत्न दिया आज वह *'विपश्यना-विहीन'* है। हमें उसका कर्ज चुकाना है और इसे तुम चुकाओगे। मुझे आश्चर्य हुआ, मैं कैसे चुकाऊंगा? लेकिन धर्म ने अपना काम किया। हर संप्रदाय के लोग आ रहे हैं। बर्मा में भी मेरे शिविर में सम्मिलित होने के बाद, मेरी तरह वहां के जो कट्टर सनातनी थे, आर्य समाजी थे, वे लोग भी बड़ी संख्या में गुरुजी के पास शिविरों में सम्मिलित होने लगे।

यहां आकर मैंने भी देखा कि कोई संप्रदाय या जाति-पांति का भेदभाव नहीं है। कैसे हर तरह के लोग आ रहे हैं। फिर जब विपश्यना बाहर जाने लगी तो वहां भी देखा- हर संप्रदाय और हर देश के लोग आ रहे हैं। चाहे कोई अपने आपको क्रिश्चन कहे, हिंदू कहे, मुस्लिम कहे...। चाहे अपने आपको किसी नाम से पुकारे, विपश्यना में सब आ रहे हैं और सब खुश हो रहे हैं। अब तक कोई 15 लाख लोग विपश्यना के शिविरों में बैठ चुके हैं। उनमें से एक आदमी यह कहने वाला नहीं आया कि मैंने अपने 10 दिन गंवा दिये। मेरे 10 दिन खराब हो गये। कोई कैसे कहता? लाभ ही हुआ। जो विपश्यना करता है लाभ होता ही है। क्यों होता है? क्योंकि सच्चाई पर आधारित है। "*किव सचिआरा होइऐ, किव कूड़ै तुटै पाल।*" कैसे सचिआरा हो जाय, कैसे झूठ की कोई परत नहीं रह जाय। सच ही सच, आगे बढ़ता चला जायगा।

अब केवल 10 दिन की बात नहीं, लोग 20 दिन, 30 दिन, 45 दिन, 60 दिन के शिविरों में सम्मिलित हो रहे हैं। जो व्यक्ति 10 दिन बैठने में झिझकता था, वही अब 60 दिन में बैठने के लिए प्रतीक्षा-सूची में है। क्यों है? कोई चमत्कार नहीं है। सच्चाई समझ में आती है। लाभ मिलता है।

आज के इस महत्त्वपूर्ण दिवस पर इस बात का ख्याल रखें कि इस विद्या की जो सच्चाई है उसमें कुछ जोड़ें नहीं, इस विद्या को शुद्ध रूप में रखना है। आज का यही संदेश है कि जो-जो साधक हैं उनको दृढ़ता के साथ इसका पालन करना है। जिन्होंने 10 दिन साधना नहीं की है वे यहां के इस वातावरण से प्रेरणा लें, किसी भी केंद्र में अपने 10 दिन दे करके विधि सीखें। कुछ नहीं खोयेंगे, अपने दुःख और संताप ही खोयेंगे, सुख ही प्राप्त करेंगे। धर्म का शुद्ध स्वरूप सब के कल्याण के लिए है। इसका यह शुद्ध स्वरूप बिगड़ने नहीं पाये। आज यह संकल्प लेना चाहिए और इसका पालन करना चाहिए।

कल्याणमित्र,

सत्यनारायण गोयन्का

अतिरिक्त उत्तरदायित्व

1-2. श्री दीपक एवं श्रीमती सत्यकला जाधव, धम्म आवास, लातूर विपश्यना केंद्र के केंद्र-आचार्य की सहायता

नव नियुक्तियां
सहायक आचार्य

1. श्रीमती ऊषा गुप्ता, अलवर (राजस्थान)
2. श्रीमती ललिता नारायण, बेंगलुरु
3. श्रीमती बीना शाह, मुंबई
4. श्री मंगेश राजपूत, नाशिक
5. श्री बेचू राम, आजमगढ़, उत्तर प्रदेश
6. श्रीमती वंदना आठवले, अकोला

बालशिविर शिक्षक

1. श्रीमती सुषमा भंडारे , सोलापुर

क्षेत्रीय संयोजक बाल-शिविर

1. श्री प्रवीण शार्दुल , क्षेत्रीय संयोजक बाल शिविर के रूप में सेवा देंगे. क्षेत्र : नई मुंबई - ऐरोली से पनवेल और कुर्ला से सीएसटी
2. श्री सचिन गांगुर्डे, क्षेत्रीय संयोजक बाल शिविर के रूप में सेवा देंगे, क्षेत्र : पश्चिमी मुंबई - चर्चगेट से पालघर
3. श्री राम मेघराजानी, क्षेत्रीय संयोजक बाल शिविर के रूप में सेवा देंगे, क्षेत्र : घाटकोपर से कर्जत और कसारा

पूज्य गुरुजी श्री सत्यनारायण गोयन्का के जन्म शताब्दी समारोह के दौरान
विश्व विपश्यना पगोडा के महा शिविर कार्यक्रमों की सूची

माह	प्रस्तावित महा शिविर तिथियां	अवसर
जून 2023	11 जून 2023, रविवार	शताब्दी वर्ष महा शिविर
जुलाई 2023	2 जुलाई 2023, रविवार	गुरु पूर्णिमाके उपलक्ष्य में
अगस्त 2023	27 अगस्त 2023, रविवार	शताब्दी वर्ष महा शिविर
सितम्बर 2023	10 सितम्बर 2023, रविवार	शताब्दी वर्ष महा शिविर
अक्टूबर 2023	1 अक्टूबर 2023, रविवार	शरद पूर्णिमा एवं पूज्य गुरुजी की पुण्यतिथि के उपलक्ष्य में
नवंबर 2023	19 नवंबर 2023 रविवार	शताब्दी वर्ष महा शिविर
दिसम्बर 2023	10 दिसम्बर 2023, रविवार	शताब्दी वर्ष महा शिविर
जनवरी 2024	14 जनवरी 2024, रविवार	संघ दान और महा शिविर
फरवरी 2024	**समापन समारोह :** 4 फरवरी 2024, रविवार	**'डॉक्यूमेंट्री फिल्म' का विमोचन और अन्य कार्यक्रम**

Registration link:- **oneday.globalpagoda.org**
For any other information- Tel :- 022-50427500 / +91 8291894644 • Email: **guruji.centenary@globalpagoda.org**

N.B. The QR code on top right corner contains informations regarding Centenary Program.

सच्ची श्रद्धांजलि

इस शताब्दी समारोह के दौरान सभी लोग अधिक से अधिक साधना एवं अपने-अपने क्षेत्रों में सामूहिक साधना करते हुए धर्म को जीवन/आचरण में उतारने का संकल्प लें तो ही पूज्य गुरुजी के प्रति सच्ची श्रद्धांजलि होगी। तभी उनके प्रवचनों एवं अन्य निर्देशों के प्रति सही सम्मान होगा। सब का मंगल हो!

दोहे धर्म के

नमन करूं मैं बुद्ध को, कैसे करुणागार!
दुःख मिटावन पथ दिया, सुखी करन संसार॥

याद करूं जब बुद्ध की, करुणा अमित अपार।
तन-मन पुलकित हो उठे, चित छाये आभार॥

सुखद-दुखद संवेदना, विषय स्पर्श-संयोग।
देख अनित्य स्वभाव को, दूर किए भवरोग॥

अब ना जागे राग ही, अब ना जागे द्वेष।
कामलोक भव चक्र के, बंधन हुए अशेष॥

दूहा धरम रा

या हि बुद्ध री बंदना, यो हि बुद्ध सम्मान।
प्रग्या करुणा प्यार स्यूं, भरल्यां तन मन प्राण॥

जागै धरम विपस्सना, अनित्यता रो ग्यान।
रोम रोम चेतन हुवै, प्रगटै पद निरवाण॥

खोजत खोजत ना मिल्यो, जग रो सिरजनहार।
देखण लाग्यो स्वयं नै, खुल्या मुक्ति रा द्वार॥

बुद्ध धरम रो, संघ रो, यो साचो सनमान।
जीवन मँह जागै धरम, हुवै जगत कल्याण॥

केमिटो टेक्नोलॉजीज (प्रा0) लिमिटेड
8, मोहता भवन, ई-मोजेस रोड, वरली, मुंबई- 400 018
फोन: 2493 8893, फैक्स: 2493 6166
Email: arun@chemito.net
की मंगल कामनाओं सहित

मोरया ट्रेडिंग कंपनी
सर्वो स्टॉकिस्ट-इंडियन ऑईल, 74, सुरेशदादा जैन शॉपिंग कॉम्प्लेक्स, एन.एच.6,
अजिंठा चौक, जलगांव - 425 003, फोन. नं. 0257-2210372, 2212877
मोबा.09423187301, Email: morolium_jal@yahoo.co.in
की मंगल कामनाओं सहित

"विपश्यना विशोधन विन्यास" के लिए प्रकाशक, मुद्रक एवं संपादक: राम प्रताप यादव, धम्मगिरि, इगतपुरी- 422 403, दूरभाष :(02553) 244086, 244076.
मुद्रण स्थान : अपोलो प्रिंटिंग प्रेस, 259, सीकाफ लिमिटेड, 69 एम. आय. डी. सी, सातपुर, नाशिक-422 007. बुद्धवर्ष 2567, वैशाख पूर्णिमा, 05 मई, 2023

वार्षिक शुल्क रु. 100/-, US $ 50 (भारत के बाहर भेजने के लिए) "विपश्यना" रजि. नं. 19156/71. Postal Regi. No. NSK/RNP-235/2021-2023

Posting day- **Purnima of Every Month,** Posted at **Igatpuri-422 403,** Dist. Nashik (M.S.) **(फुटकर बिक्री नहीं होती)**
DATE OF PRINTING: 18 APRIL, 2023, DATE OF PUBLICATION: 05 MAY, 2023

If not delivered please return to:-
विपश्यना विशोधन विन्यास
धम्मगिरि, इगतपुरी - 422 403
जिला-नाशिक, महाराष्ट्र, भारत
फोन : (02553) 244076, 244086,
244144, 244440.
Email: vri_admin@vridhamma.org;
Course Booking: info.giri@vridhamma.org
Website: www.vridhamma.org